[2014] 7 एस. सी. आर. 1027

नवल किशोर शर्मा

बनाम

भारत संघ और अन्य

(2014 की दीवानी अपील सं. 7414)

7 अगस्त, 2014

[रंजन गोगोई और एम. वाई. इकबाल, न्यायमूर्तिगण]

भारत का संविधान, 1950:

अनुच्छेद 226 (2) - उच्च न्यायालय का प्रादेशिक क्षेत्राधिकार - वाद का कारण - अपीलकर्ता, भारतीय नौवहन निगम के अपतटीय विभाग में एक नाविक - बाद में पाया गया कि वह हृदय की मांसपेशियों की बीमारी से पीड़ित है - भारत सरकार के नौवहन विभाग, मुंबई से नाविक के रूप में अपना पंजीकरण रद्द करने का आदेश अपने निवास स्थान, यानी गया, बिहार में प्राप्त किया - दावों के लिए अपीलकर्ता द्वारा पटना उच्च न्यायालय में विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर की गई - इसकी संधार्यता - अभिनिर्धारितः यह प्रश्न कि क्या विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर करने का कारण पूर्णतः या आंशिक रूप से किसी उच्च न्यायालय की प्रादेशिक सीमा के भीतर उत्पन्न हुआ है या नहीं, इसका निर्णय अनुच्छेद 226 (2) के तहत कार्यवाही की प्रकृति और स्वरूप के आलोक में किया जाना है। एक विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को कायम रखने के लिए याचिकाकर्ता को यह स्थापित करना होगा कि उसके द्वारा दावा किए गए कानूनी अधिकार का उल्लंघन उत्तरदाताओं द्वारा उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार की प्रादेशिक सीमा के भीतर किया गया है - ववर्तमान मामले में, वाद-कारण का एक हिस्सा या अंश पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के भीतर उत्पन्न हुआ जहाँ अपीलकर्ता को अस्वीकृति का पत्र प्राप्त हुआ, जिससे उसे विकलांगता मुआवजे से वंचित कर दिया गया था - इसके अलावा, जब पटना उच्च न्यायालय में विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर

की गई और उस पर सुनवाई की गई, और उत्तरदाताओं की सुनवाई के बाद अंतरिम राहत प्रदान की गई थी, तो उन्होंने शुरू में क्षेत्राधिकार का प्रश्न नहीं उठाया - इसलिए, आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है और मामला उच्च न्यायालय को विनिर्दिष्ट आदेश याचिका के गुण-दोष के आधार पर निर्णय हेतु प्रेषित किया जाता है - दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 20 (सी)।

अपीलकर्ता नवंबर 1988 में भारतीय नौवहन निगम के अपतटीय विभाग में शामिल हुआ। बाद में, उसे विदेश जाने वाले विभाग के मुख्य बेड़े में स्थानांतरित कर दिया गया। हालाँकि, बाद में, निगम के सहायक चिकित्सा अधिकारी द्वारा जारी दिनांक 18.3.2011 के प्रमाण पत्र के अनुसार, उसे डाइलेटेड कार्डियोमायोपैथी (हृदय की मांसपेशियों की बीमारी) के कारण समुद्री सेवा के लिए स्थायी रूप से अयोग्य माना गया। परिणामस्वरूप, भारत सरकार के नौवहन विभाग, मुंबई ने दिनांक 12.4.2011 का आदेश जारी कर अपीलकर्ता का नाविक के रूप में पंजीकरण रद्द कर दिया। अपीलकर्ता अपने पैतृक स्थान गया, बिहार में बस गया और उसने वहाँ से उत्तरदाताओं को विकलांगता मुआवजे सहित अपने दावों के लिए अभ्यावेदन भेजा। दिनांक 7.10.2011 के पत्र द्वारा, उत्तरदाता संख्या 2- निगम ने उसके पैतृक स्थान के पते पर सूचित किया कि अपीलकर्ता 2,75,000/- रुपये के विच्छेद मुआवजे का हकदार है, लेकिन वह विकलांगता मुआवजे का हकदार नहीं है। अपीलकर्ता द्वारा दायर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में, पटना उच्च न्यायालय ने अंतरिम राहत प्रदान की। इसके बाद, जब विनिर्दिष्ट आदेश याचिका सुनवाई के लिए सूचीबद्ध की गई, तो उच्च न्यायालय ने इसे प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के अभाव में खारिज कर दिया।

वर्तमान अपील में, न्यायालय के समक्ष विचारणीय प्रश्न यह था: क्या पटना उच्च न्यायालय का यह दृष्टिकोण सही था कि उसे विनिर्दिष्ट आदेश याचिका पर विचार करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है।

अपील स्वीकार करते हुए, न्यायालय द्वारा

अभिनिर्धारित: 1.1. नागरिकों को विनिर्दिष्ट आदेश क्षेत्राधिकार का उपयोग करने में होने वाली अत्यधिक कठिनाई और असुविधा को दूर करने के लिए, भारत का संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 में 1963 और पुनः 1976 में संशोधन किया गया था। अनुच्छेद 226 के खंड (2) में संशोधित प्रावधानों के स्पष्ट पठन से यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय तब विनिर्दिष्ट आदेश जारी कर सकता है जब वह व्यक्ति या प्राधिकरण जिसके विरुद्ध विनिर्दिष्ट आदेश जारी किया गया है, उसके प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के बाहर स्थित हो, यदि वाद-कारण पूर्णतः या अंशतः उच्च न्यायालय के प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के भीतर उत्पन्न होता है। संविधान के अनुच्छेद 226 (2) के उद्देश्य के लिए, वाद-कारण का वही अर्थ निकाला जाना चाहिए जैसा कि दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 20 (सी) के अंतर्गत परिकल्पित है। वाद-कारण शब्द को न तो दीवानी प्रक्रिया संहिता और न ही संविधान में परिभाषित किया गया है। वाद-कारण उन तथ्यों का समूह है जिन्हें वादी के लिए वाद में सफल होने से पहले सिद्ध करना आवश्यक होता है। [कंडिका 10 और 11] [1036-एफ-एच; 1037-ए]

राजस्थान राज्य एवं अन्य बनाम मेसर्स स्वाइका प्रॉपर्टीज एवं एक अन्य, **1985 (3) एससीआर 598 = (1985) 3 एससीसी 217;** *तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग बनाम उत्पल कुमार बसु एवं अन्य,* **1994 (1) अनुपूरक एससीआर 252 = (1994) 4 एससीसी 711;** *कुसुम इनगोट्स एंड अलॉयज लिमिटेड बनाम भारत संघ एवं एक अन्य* **2004 (1) अनुपूरक एससीआर 841 = (2004) 6 एससीसी 254;** *भारत संघ एवं अन्य बनाम अडानी एक्सपोर्ट्स लिमिटेड एवं अन्य* **2001 (4 अनुपूरक एससीआर 631 = (2002) 1 एससीसी 567;** *ओम प्रकाश श्रीवास्तव बनाम भारत संघ एवं एक अन्य* **2007 (5) एससीआर 923 = (2006) 6 एससीसी 207;** *राजेंद्रन चिंगरावेलु बनाम आर.के. मिश्रा, अतिरिक्त आयकर आयुक्त एवं अन्य* **2009 (15) एससीआर 1113 = (2010) 1 एससीसी 457 - पर अवलम्बित।**

चुनाव आयोग, भारत बनाम शक वेंकट राव **1953 एससीआर 1144 = एआईआर 1953 एससी 210;** *के.एस. राशिद एंड सन बनाम आयकर जांच आयोग आदि* **1954**

एससीआर 738 = एआईआर 1954 एससी 207, *लेफ्टिनेंट कर्नल खजूर सिंह बनाम भारत संघ एवं एक अन्य*, 1961 एससीआर 828 = एआईआर 1961 एससी 532 – संदर्भित।

1.2. इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर करने के लिए वाद-कारण पूर्णतः या अंशतः किसी उच्च न्यायालय की प्रादेशिक सीमा के भीतर उत्पन्न हुआ है या नहीं, इसका निर्णय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही की प्रकृति और चरित्र के आलोक में किया जाना चाहिए। विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को बनाए रखने के लिए, याचिकाकर्ता को यह स्थापित करना होगा कि उसके द्वारा दावा किए गए कानूनी अधिकार का उल्लंघन उत्तरदाताओं द्वारा उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार की प्रादेशिक सीमा के भीतर किया गया है। [कंडिका 19] [1044-ए·बी]

1.3. विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में दिए गए तथ्यों और अपीलकर्ता द्वारा अवलंबन लिए गए दस्तावेजों से यह स्पष्ट है कि उसे डाइलेटेड कार्डियोमायोपैथी (हृदय की मांसपेशियों की बीमारी) के कारण समुद्री सेवा के लिए स्थायी रूप से अयोग्य घोषित किया गया था। परिणामस्वरूप, भारत सरकार के नौवहन विभाग ने दिनांक 12.4.2011 को एक आदेश जारी किया, जिसके द्वारा अपीलकर्ता का नाविक के रूप में पंजीकरण रद्द कर दिया गया। उस पत्र की एक प्रति अपीलकर्ता को बिहार में उसके पैतृक स्थान पर भेजी गई थी, जहाँ वह चिकित्सीय रूप से अयोग्य पाए जाने के बाद रह रहा था। अपीलकर्ता ने बिहार राज्य में अपने घर से उत्तरदाताओं को विकलांगता मुआवजे का दावा करते हुए एक अभ्यावेदन भेजा। उक्त अभ्यावेदन का उत्तर उत्तरदाता द्वारा दिया गया, जो गया, बिहार में उसके घर के पते पर भेजा गया था, जिसमें उसके विकलांगता मुआवजे के दावे को खारिज कर दिया गया था। इसलिए, *प्रथम दृष्टया*, सभी तथ्यों पर एक साथ विचार करने पर, वाद-कारण का एक हिस्सा या अंश पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के भीतर उत्पन्न हुआ जहाँ उसे अस्वीकृति का पत्र प्राप्त हुआ, जो उसे विकलांगता मुआवजे से वंचित करता था। [कंडिका 20] [1044-सी-एफ; 1045-ए-बी]

1.4. इसके अलावा, उत्तरदाताओं के प्रति-शपथपत्र और उसके साथ संलग्न दस्तावेजों से यह पता चलता है कि पटना उच्च न्यायालय में विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर होने के बाद, उसे स्वीकार किया गया और नोटिस जारी किए गए। उक्त नोटिस के अनुसरण में, उत्तरदाता उपस्थित हुए और उच्च न्यायालय की कार्यवाही में भाग लिया। इससे आगे यह भी पता चलता है कि दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, उच्च न्यायालय ने 18.9.2012 को एक अंतरिम आदेश पारित किया जिसमें "भारतीय नौवहन निगम के अधिकारियों को कम से कम 2.75 लाख रुपये की राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया गया, जो विनिर्दिष्ट आदेश याचिका के परिणाम के अधीन होगा। अंतरिम आदेश के अनुसरण में, उत्तरदाता भारतीय नौवहन निगम ने अपीलकर्ता के बैंक खाते में 2,67,270/- रुपये (आयकर की कटौती के बाद) प्रेषित किए। हालांकि, जब विनिर्दिष्ट आदेश याचिका सुनवाई के लिए ली गई, तो उच्च न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि उसके प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के भीतर कोई वाद-कारण, यहाँ तक कि वाद-कारण का एक अंश भी, उत्पन्न नहीं हुआ है। [कंडिका 21] [1045-बी-ई]

1.5. मामले के संपूर्ण तथ्यों पर विचार करते हुए, जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश भी सम्मिलित है, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के अभाव में विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को खारिज नहीं किया जाना चाहिए था। जिस समय अंतरिम राहत प्रदान करने के प्रयोजन के लिए विनिर्दिष्ट आदेश याचिका पर सुनवाई की गई थी, उस समय उत्तरदाताओं ने प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के संबंध में कोई आपत्ति उठाने के बजाय इस आधार पर प्रार्थना का विरोध किया था कि विनिर्दिष्ट आदेश याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता को 2.75 लाख रुपये की राशि की पेशकश की गई थी, लेकिन उसने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया और विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर करके विच्छेद मुआवजा प्रदान करने वाले आदेश को चुनौती दी। इसलिए, इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में आक्षेपित आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है और, इस नाते, इसे अपास्त किया जाता

है और मामले को गुण-दोष के आधार पर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका पर निर्णय लेने के लिए उच्च न्यायालय को प्रेषित किया जाता है। [कंडिका 22-23] [1045-एफ-एच; 1046-ए-बी]

नज़ीर सन्दर्भ:

1953 एससीआर 1144	**संदर्भित**	**कंडिका 9**
1954 एससीआर 738	**संदर्भित**	**कंडिका 9**
1961 एससीआर 828	**संदर्भित**	**कंडिका 9**
1985 (3) एससीआर 598	**पर अवलंबित**	**कंडिका 13**
1994 (1) अनुपूरक एससीआर 252	**पर अवलंबित**	**कंडिका 14**
2004 (1) अनुपूरक एससीआर 841	**पर अवलंबित**	**कंडिका 15**
200t (4) अनुपूरक एससीआर 631	**पर अवलंबित**	**कंडिका 16**
2007 (5) एससीआर 923	**पर अवलंबित**	**कंडिका 17**
2009 (15) एससीआर 1113	**पर अवलंबित**	**कंडिका 19**

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2014 की दीवानी अपील सं. 7414

पटना उच्च न्यायालय द्वारा दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 3160/2012 में दिनांक 16.04.2013 को पारित निर्णय एवं आदेश से।

अपीलकर्ता की ओर से गुरु कृष्ण कुमार, राकेश कुमार, प्रभात कौशिक, देव नंदन रजक, मनीष अरोड़ा और मृदुला रे भारद्वाज।

उत्तरदाताओं की ओर से एन.के. कौल, एएसजी, नागेंद्र राय, रश्मि मल्होत्रा शिल्पा नायर, संयत लोढ़ा, आकांक्षा कौल भारती त्यागी, डी.एस. माहरा मनिता वर्मा, एस. जननी और देवाशीष भारुका।

न्यायालय का निर्णय

एम.वाई. इकबाल, न्यायमूर्ति द्वारा सुनाया गया। 1. अनुमति प्रदान की गई।

2. पटना उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 16.4.2013 को पारित निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, जिसके द्वारा अपीलकर्ता की विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के अभाव में खारिज कर दिया गया था, विशेष अनुमति द्वारा यह अपील उस अपीलकर्ता द्वारा अधिमानित की गई है, जो नवंबर, 1988 में भारतीय नौवहन निगम (संक्षेप में, "निगम") के अपतटीय विभाग में शामिल हुआ था और लगभग आठ वर्षों के बाद उसे अपतटीय कर्तव्य से विदेश जाने वाले विभाग के एक मुख्य बेड़े में स्थानांतरित कर दिया गया था।

3. अपीलकर्ता का यह मामला है कि फरवरी, 2009 में समुद्री चिकित्सा सेवाओं द्वारा आयोजित चिकित्सा परीक्षण में वह चिकित्सीय रूप से स्वस्थ पाया गया था और उसके बाद, 29.9.2009 को, नाविकों के नियोजन के लिए अनुबंध के रूप में ज्ञात एक समझौता अपीलकर्ता के अपतटीय कर्तव्य के लिए निष्पादित किया गया था। 18.6.2010 को, जब अपीलकर्ता ने बीमारी यानी खांसी, पेट दर्द, पैर में सूजन और सांस लेने में कठिनाई की सूचना दी, तो उसे अडानी, मुंद्रा पोर्ट पर तट पर चिकित्सा उपचार के लिए भेजा गया। तट पर स्थित चिकित्सा अधिकारी ने उसे अस्पताल में भर्ती होने की सलाह दी और तदनुसार उसे आगे के चिकित्सा उपचार के लिए कार्यमुक्त कर दिया गया। इसके पश्चात, निगम के सहायक चिकित्सा अधिकारी द्वारा जारी दिनांक 18.3.2011 के प्रमाण पत्र के अनुसार, उसे डाइलेटेड कार्डियोमायोपैथी (हृदय की मांसपेशियों की बीमारी) के कारण समुद्री सेवा के लिए स्थायी रूप से अयोग्य माना गया। इसके परिणामस्वरूप, भारत सरकार के नौवहन विभाग, मुंबई ने दिनांक 12.4.2011 को आदेश जारी किया, जिसके द्वारा अपीलकर्ता का नाविक के रूप में पंजीकरण रद्द कर दिया गया।

4. अपीलकर्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि अपने पैतृक स्थान गया, बिहार में बसने के बाद, उसने सांविधिक प्रावधानों और अनुबंध की शर्तों के अनुसार अपने वित्तीय दावों के लिए वहां से उत्तरदाताओं को कई पत्र/अभ्यावेदन भेजे। विकलांगता मुआवजा दावे पर,

उत्तरदाता संख्या 2-निगम ने दिनांक 7.10.2011 के पत्र के माध्यम से सूचित किया कि चूंकि अपीलकर्ता को हृदय की समस्या (आंगिक रोग) के कारण समुद्री सेवा के लिए अयोग्य घोषित किया गया था, इसलिए वह 2,75,000/- रुपये का विच्छेद मुआवजा प्राप्त करने का हकदार होगा, जिसकी हालांकि पेशकश की गई थी, लेकिन अपीलकर्ता द्वारा उसे स्वीकार नहीं किया गया। यह भी सूचित किया गया था कि वह विकलांगता मुआवजा प्राप्त करने का हकदार नहीं है, जो केवल उस स्थिति में देय होता है जब कोई नाविक चोट के परिणामस्वरूप अक्षम हो जाता है।

5. एक विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर करके, अपीलकर्ता ने 100% विकलांगता मुआवजा और आर्थिक क्षतिपूर्ति सहित विभिन्न राहतों की स्वीकृति के लिए भारत का संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत पटना उच्च न्यायालय का रुख किया। हालांकि, सुनवाई के समय, उत्तरदाताओं ने इस आधार पर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका की संधार्यता पर सवाल उठाया कि पटना उच्च न्यायालय के प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के भीतर कोई वाद-कारण या वाद-कारण का एक अंश भी उत्पन्न नहीं हुआ है और तर्क दिया कि अपीलकर्ता को निगम द्वारा अपतटीय सेवाओं के लिए नाविक के पद पर नियुक्त किया गया था और उसने बिहार राज्य के क्षेत्र के बाहर अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया था। उत्तरदाता का यह मामला है कि अपीलकर्ता को स्थायी रूप से अयोग्य घोषित करने वाला आदेश और साथ ही दिनांक 7.10.2011 का पत्र/आदेश मुंबई में उत्तरदाता निगम के एक प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया था। इसके विपरीत, अपीलकर्ता का यह मामला है कि वह बिहार का स्थायी निवासी है और उसने बिहार राज्य में अपने अधिकारों का दावा किया और उसके दावों की अस्वीकृति के संबंध में सभी संचार बिहार राज्य में उसके आवासीय पते पर किए गए थे।

6. पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेख पर मौजूद संपूर्ण सामग्रियों पर विचार करने के बाद, पटना उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपीलकर्ता की विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को यह धारण करते हुए खारिज कर

दिया कि इसके प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के भीतर कोई वाद-कारण, यहाँ तक कि वाद-कारण का एक अंश भी उत्पन्न नहीं हुआ है। अतः, विशेष अनुमति द्वारा यह वर्तमान अपील स्वीकार की जाती है।

7. हमने पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है।

8. वर्तमान मामले के तथ्यों में विचार के लिए जो संक्षिप्त प्रश्न आता है, वह यह है कि क्या पटना उच्च न्यायालय का यह दृष्टिकोण सही है कि उसे विनिर्दिष्ट आदेश याचिका पर विचार करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। उक्त प्रश्न का उत्तर देने के लिए हम संविधान के अनुच्छेद 226 के प्रावधान पर विचार करना चाहेंगे जैसा कि वह संशोधन से पूर्व था। मूल रूप से, संविधान के अनुच्छेद 226 का पाठ इस प्रकार था:-

> "**अनुच्छेद 226. उच्च न्यायालयों की कुछ विनिर्दिष्ट आदेश जारी करने की शक्ति-** (1) अनुच्छेद 32 में किसी बात के होते हुए भी, प्रत्येक उच्च न्यायालय को उन राज्यक्षेत्रों में सर्वत्र, जिनके संबंध में वह क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, उन राज्यक्षेत्रों के भीतर किसी व्यक्ति या प्राधिकारी को, जिसमें उपयुक्त मामलों में कोई सरकार भी है, निर्देश, आदेश या विनिर्दिष्ट आदेश, जिसके अंतर्गत *बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा* और *उत्प्रेषण* की प्रकृति के विनिर्दिष्ट आदेश भी हैं, या उनमें से किसी को, भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए और किसी अन्य प्रयोजन के लिए जारी करने की शक्ति होगी।
>
> (2) खंड (1) द्वारा उच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्ति अनुच्छेद 32 के खंड (2) द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्ति के अल्पीकरण में नहीं होगी"।

9. उपरोक्त प्रावधान की व्याख्या करते हुए, *भारत निर्वाचन आयोग बनाम साका वेंकट राव,* ए.आई.आर. 1953 एस सी 210 के मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि विनिर्दिष्ट आदेश न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार के अधीन क्षेत्रों से बाहर नहीं जाएगा और विनिर्दिष्ट आदेश से प्रभावित व्यक्ति या प्राधिकारी या तो निवास या उन

क्षेत्रों के भीतर स्थान के आधार पर न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन होना चाहिए। यह नियम कि वाद-कारण वादों में क्षेत्राधिकार को आकर्षित करता है, सांविधिक अधिनियमन पर आधारित है और संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत जारी विनिर्दिष्ट आदेशों पर लागू नहीं हो सकता है, जो किसी वाद-कारण या वह कहाँ उत्पन्न होता है, इसका कोई संदर्भ नहीं देता है, बल्कि उन क्षेत्रों के भीतर व्यक्ति या प्राधिकारी की उपस्थिति पर जोर देता है जिनके संबंध में उच्च न्यायालय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है। इस न्यायालय के एक अन्य संविधान पीठ के निर्णय, *के.एस. राशिद एंड सन बनाम आयकर जांच आयोग इत्यादि,* ए.आई.आर. 1954 एस सी 207 में, इस न्यायालय ने समान दृष्टिकोण अपनाया और अभिनिर्धारित किया कि विनिर्दिष्ट आदेश न्यायालय अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग अपने प्रादेशिक क्षेत्राधिकार से बाहर नहीं कर सकता है। न्यायालय का यह विचार था कि अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग दोहरी सीमा के अधीन था, अर्थात्, पहला, शक्ति का प्रयोग उन क्षेत्रों के संबंध में किया जाना है जहाँ वह क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है और दूसरा, वह व्यक्ति या प्राधिकारी जिसे उच्च न्यायालय विनिर्दिष्ट आदेश जारी करने के लिए सशक्त है, उन क्षेत्रों के भीतर होना चाहिए। ये दो संविधान पीठ के निर्णय इस न्यायालय के सात न्यायाधीशों की एक बड़ी पीठ के समक्ष *लेफ्टिनेंट कर्नल खजूर सिंह बनाम भारत संघ और अन्य,* ए.आई.आर. 1961 एस सी 532 के मामले में विचार के लिए आए। पीठ ने उपरोक्त दो संविधान पीठ के निर्णयों का अनुमोदन किया और राय दी कि जब तक स्पष्ट और बाध्यकारी कारण न हों, जिन्हें नकारा नहीं जा सकता, विनिर्दिष्ट आदेश न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने प्रादेशिक क्षेत्राधिकार से बाहर क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता है।

10. उपरोक्त निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा दी गई व्याख्या के परिणामस्वरूप नागरिकों को विनिर्दिष्ट आदेश क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में अत्यधिक कठिनाई और असुविधा हुई। परिणामस्वरूप, संविधान (15 वां) संशोधन अधिनियम, 1963 द्वारा अनुच्छेद

226 में खंड 1(ए) जोड़ा गया और बाद में संविधान (42 वां) संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा इसे खंड (2) के रूप में पुन: क्रमांकित किया गया। संशोधित खंड (2) अब इस प्रकार है:-

> **"226. उच्च न्यायालयों की कुछ विनिर्दिष्ट आदेश जारी करने की शक्ति** - (1) अनुच्छेद 32 में किसी बात के होते हुए भी, प्रत्येक उच्च न्यायालय को उन राज्यक्षेत्रों में सर्वत्र, जिनके संबंध में वह क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, उन राज्यक्षेत्रों के भीतर किसी व्यक्ति या प्राधिकारी को, जिसमें उपयुक्त मामलों में कोई सरकार भी है, निर्देश, आदेश या विनिर्दिष्ट आदेश, जिसके अंतर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण की प्रकृति के विनिर्दिष्ट आदेश भी हैं, या उनमें से किसी को, भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए और किसी अन्य प्रयोजन के लिए जारी करने की शक्ति होगी।
>
> (2) किसी सरकार, प्राधिकारी या व्यक्ति को निर्देश, आदेश या विनिर्दिष्ट आदेश जारी करने के लिए खंड (1) द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग उस राज्यक्षेत्र के संबंध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले किसी भी उच्च न्यायालय द्वारा भी किया जा सकेगा, जिसके भीतर ऐसी शक्ति के प्रयोग के लिए वाद-कारण, पूर्णतः या अंशतः, उत्पन्न होता है, इस बात के होते हुए भी कि ऐसी सरकार या प्राधिकारी का स्थान या ऐसे व्यक्ति का निवास उन राज्यक्षेत्रों के भीतर नहीं है।
>
> (3) xxxxx
>
> (4) xxxxx"

11. संशोधित खंड (2) के प्रावधानों के साधारण पाठ से यह स्पष्ट है कि अब उच्च न्यायालय तब विनिर्दिष्ट आदेश जारी कर सकता है जब वह व्यक्ति या प्राधिकारी जिसके विरुद्ध विनिर्दिष्ट आदेश जारी किया गया है, उसके प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के बाहर स्थित हो, यदि वाद-कारण पूर्णतः या अंशतः न्यायालय के प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के भीतर उत्पन्न होता है। भारत का संविधान के अनुच्छेद 226 (2) के प्रयोजन के लिए, सभी मंतव्यों और उद्देश्यों

के लिए वाद-कारण का वही अर्थ होना चाहिए जैसा कि दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 20(ग) के तहत परिकल्पित है। वाद-कारण शब्द को न तो दीवानी प्रक्रिया संहिता में और न ही भारत का संविधान में परिभाषित किया गया है। वाद-कारण तथ्यों का वह समूह है जिसे वादी के लिए वाद में सफल होने से पहले सिद्ध करना आवश्यक होता है।

12. खंड (2) में आने वाला पद 'वाद-कारण' इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए बार-बार आया है।

13. राजस्थान राज्य एवं अन्य बनाम मेसर्स स्वाइका प्रॉपर्टीज एवं एक अन्य, (1985) 3 एससीसी 217 के मामले में तथ्य यह था कि कलकत्ता में अपना पंजीकृत कार्यालय रखने वाली उत्तरदाता-कंपनी, जिसके पास जयपुर शहर के बाहरी इलाके में कुछ भूमि थी, उसे राजस्थान अर्बन इम्प्रूवमेंट एक्ट, 1959 के तहत भूमि अधिग्रहण का नोटिस दिया गया था। नोटिस कंपनी को कलकत्ता स्थित उसके पंजीकृत कार्यालय में विधिवत तामील किया गया था। कंपनी पहले विशेष न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुई और अंततः कलकत्ता उच्च न्यायालय में अधिग्रहण की अधिसूचना को चुनौती देते हुए एक विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर की। मामला अंततः इस न्यायालय के समक्ष इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए आया कि क्या अधिनियम की धारा 52(2) के तहत कलकत्ता में उत्तरदाता के पंजीकृत कार्यालय में नोटिस की तामीली वाद-कारण का एक अभिन्न अंग थी और क्या यह कलकत्ता उच्च न्यायालय को विवादित अधिसूचना को चुनौती देने वाली याचिका पर विचार करने का क्षेत्राधिकार प्रदान करने के लिए पर्याप्त था। प्रश्न का उत्तर देते हुए इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:-

> "**7.** इन तथ्यों के आधार पर, हम संतुष्ट हैं कि वाद-कारण न तो पूर्णतः और न ही अंशतः कलकत्ता उच्च न्यायालय की प्रादेशिक सीमाओं के भीतर उत्पन्न हुआ और इसलिए विद्वान एकल न्यायाधीश के पास भारत का संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उत्तरदाताओं द्वारा दायर याचिका पर नियम निसी जारी करने या अपीलकर्ताओं

को अधिग्रहित भूमि का कब्जा लेने के लिए कोई भी कदम उठाने से रोकने के लिए अंतरिम एकपक्षीय निषेधात्मक आदेश देने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था। अधिनियम की धारा 52 की उप-धारा (5) के तहत अपीलकर्ता उत्तरदाताओं से अधिग्रहित भूमि का कब्जा तुरंत सौंपने या देने की अपेक्षा करने के हकदार थे और उनके ऐसा करने में विफल रहने पर, उसकी उप-धारा (6) के तहत ऐसा कब्जा सुरक्षित करने के लिए तत्काल कदम उठाने के हकदार थे।"

8. "वाद का कारण' शब्द को *मुल्ला की दीवानी प्रक्रिया संहिता* में संक्षेप में परिभाषित किया गया है:

"'वाद का कारण' का अर्थ है प्रत्येक तथ्य, जिसे यदि पार किया जाता है, तो वादी को अपने दावे का समर्थन करने के लिए उसे न्यायालय के निर्णय का अधिकार साबित करना आवश्यक होगा।"

दूसरे शब्दों में, यह तथ्यों का एक ऐसा समूह है जिसे उन पर लागू होने वाली विधि के साथ देखने पर वादी को प्रतिवादी के विरुद्ध राहत का अधिकार प्राप्त होता है। अधिनियम की धारा 52(2) के तहत उत्तरदाताओं को उनके पंजीकृत कार्यालय 18-बी, ब्रेबॉर्न रोड, कलकत्ता, अर्थात् पश्चिम बंगाल राज्य की प्रादेशिक सीमाओं के भीतर, केवल नोटिस की तामीली मात्र से उस क्षेत्र के भीतर वाद-कारण उत्पन्न नहीं हो सकता, जब तक कि ऐसे नोटिस की तामीली वाद-कारण का एक अभिन्न अंग न हो। अधिनियम की धारा 52(1) के तहत भूमि के अधिग्रहण में परिणत होने वाला संपूर्ण वाद-कारण राजस्थान राज्य के भीतर, अर्थात् जयपुर पीठ में राजस्थान उच्च न्यायालय के प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के भीतर उत्पन्न हुआ। इस प्रश्न का उत्तर कि क्या नोटिस की तामीली भारत का संविधान के अनुच्छेद 226(2) के अर्थ के भीतर वाद-कारण का एक अभिन्न अंग है, वाद-कारण को जन्म देने वाले विवादित आदेश की प्रकृति पर निर्भर होना चाहिए। अधिनियम की धारा 52(1) के तहत राज्य सरकार

द्वारा जारी दिनांक 8 फरवरी, 1984 की अधिसूचना उसी क्षण प्रभावी हो गई जब इसे आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित किया गया था, क्योंकि उसके बाद अधिसूचित भूमि सभी बाधाओं से मुक्त होकर राज्य सरकार में निहित हो गई। उत्तरदाताओं के लिए अधिनियम की धारा 52(1) के तहत राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना को अभिखंडित करने के लिए भारत का संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक उपयुक्त विनिर्दिष्ट आदेश, निर्देश या आदेश की स्वीकृति हेतु, विशेष अधिकारी, नगर नियोजन विभाग, जयपुर द्वारा धारा 52(2) के तहत उन्हें नोटिस दिए जाने की तामीली का अभिवचन करना आवश्यक नहीं था। यदि उत्तरदाता जयपुर में स्थित अपनी भूमि के अधिग्रहण से व्यथित महसूस करते थे और भारत का संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका द्वारा अधिनियम की धारा 52(1) के तहत राजस्थान राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना की वैधता को चुनौती देना चाहते थे, तो ऐसी राहत की स्वीकृति के लिए उत्तरदाताओं को राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ के समक्ष ऐसी याचिका दायर करके उपचार खोजना था, जहाँ वाद-कारण पूर्णतः या अंशतः उत्पन्न हुआ था।"

14. इस प्रावधान पर इस न्यायालय द्वारा तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग बनाम उत्पल कुमार बसु और अन्य, (1994) 4 एससीसी 711 के मामले में पुनः विचार किया गया था। इस मामले में याचिकाकर्ता तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग (ओ.एन.जी.सी.) ने अपने परामर्शदाता इंजीनियर्स इंडिया लिमिटेड (ई.आई.एल.) के माध्यम से गुजरात में केरोसिन रिकवरी प्रोसेसिंग यूनिट की स्थापना के लिए निविदाएं आमंत्रित करते हुए समाचार पत्र में एक विज्ञापन जारी किया था, जिसमें उल्लेख किया गया था कि प्रस्तावों वाली निविदाएं ई.आई.एल., नई दिल्ली को सूचित की जानी थीं। नई दिल्ली में संचालन समिति द्वारा अंतिम निर्णय लिए जाने के बाद, उत्तरदाता निको (एन.आई.सी.सी.ओ.) ने कलकत्ता उच्च न्यायालय का रुख किया और प्रार्थना की कि ओ.एन.जी.सी. को किसी अन्य पक्ष को अनुबंध देने से

रोका जाए। याचिका में यह तर्क दिया गया था कि निको को कलकत्ता उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के भीतर "टाइम्स ऑफ इंडिया" में प्रकाशन से निविदा के बारे में पता चला था। इस न्यायालय ने कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अपास्त करते हुए निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला:--

> "**6.** "इसलिए, प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के अभाव की आपत्ति का निर्धारण करते समय, न्यायालय को वाद-कारण के समर्थन में अभिवचित सभी तथ्यों पर विचार करना चाहिए, हालांकि उक्त तथ्यों की शुद्धता या अन्यथा के संबंध में किसी जांच में शामिल हुए बिना। दूसरे शब्दों में, यह प्रश्न कि क्या किसी उच्च न्यायालय के पास विनिर्दिष्ट आदेश याचिका पर विचार करने के लिए प्रादेशिक क्षेत्राधिकार है, याचिका में किए गए कथनों के आधार पर दिया जाना चाहिए, जिसकी सच्चाई या अन्यथा अप्रासंगिक है। इसे अलग तरह से कहें तो, प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के प्रश्न का निर्णय याचिका में अभिवचित तथ्यों के आधार पर किया जाना चाहिए। इसलिए, क्या वर्तमान मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय के पास कथित तथ्यों के आधार पर भी संबंधित विनिर्दिष्ट आदेश याचिका पर विचार करने और निर्णय लेने का क्षेत्राधिकार था, यह इस बात पर निर्भर होना चाहिए कि क्या कंडिका 5, 7, 18, 22, 26 और 43 में किए गए कथन कानूनन यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त हैं कि वाद-कारण का एक अंश कलकत्ता उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के भीतर उत्पन्न हुआ था।"

15. *कुसुम इनगोट्स एंड अलॉयज लिमिटेड बनाम भारत संघ एवं एक अन्य*, (2004) 6 एससीसी 254 में, इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226 के खंड (2) पर, विशेष रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 20(सी) और धारा 141 के संदर्भ में 'वाद का कारण' शब्द के अर्थ पर विस्तार से चर्चा की और यह टिप्पणी की:-

> "**9.** यद्यपि दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 141 को देखते हुए इसके प्रावधान विनिर्दिष्ट आदेश कार्यवाहियों पर लागू नहीं होंगे, फिर भी दीवानी प्रक्रिया संहिता की

धारा 20(ग) और अनुच्छेद 226 के खंड (2) में प्रयुक्त शब्दावली समान विषयक होने के कारण, दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 20(ग) की व्याख्या पर दिए गए इस न्यायालय के निर्णय विनिर्दिष्ट आदेश कार्यवाहियों पर भी लागू होंगे। मामले पर आगे चर्चा करने से पहले यह बताया जा सकता है कि अभिवचित तथ्यों का संपूर्ण समूह वाद-कारण का गठन करे यह आवश्यक नहीं है, क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा डिक्री प्राप्त करने से पहले जो सिद्ध करना आवश्यक है, वह भौतिक तथ्य हैं। भौतिक तथ्य की अभिव्यक्ति को अभिन्न तथ्य के रूप में भी जाना जाता है।

10. भारत का संविधान के अनुच्छेद 226 के खंड (2) में प्रयुक्त अभिव्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए, निर्विवाद रूप से यदि वाद-कारण का एक छोटा सा अंश भी न्यायालय के क्षेत्राधिकार के भीतर उत्पन्न होता है, तो न्यायालय को उस मामले में क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा।"

माननीय न्यायाधीशों ने आगे निम्नलिखित टिप्पणी की:-

"**29.** भारत का संविधान के अनुच्छेद 226 के खंड (2) को देखते हुए, अब यदि वाद-कारण का कोई हिस्सा उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के बाहर उत्पन्न होता है, तो उसे विनिर्दिष्ट आदेश जारी करने का क्षेत्राधिकार होगा। इस प्रकार, *खजूर सिंह* के निर्णय का कोई अनुप्रयोग नहीं है।

30. हालांकि, हमें खुद को यह याद दिलाना चाहिए कि भले ही वाद-कारण का एक छोटा सा हिस्सा उच्च न्यायालय के प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के भीतर उत्पन्न होता हो, लेकिन इसे अपने आप में एक निर्णायक कारक नहीं माना जा सकता है जो उच्च न्यायालय को गुण-दोष के आधार पर मामले का निर्णय करने के लिए बाध्य करता हो। उपयुक्त मामलों में, न्यायालय सुविधाजनक मंच के सिद्धांत का आह्वान करके अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर सकता है।"

16. *भारत संघ एवं अन्य बनाम अडानी एक्सपोर्ट्स लिमिटेड एवं एक अन्य* (2002) 1 एससीसी 567 के मामले में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि किसी उच्च न्यायालय को विनिर्दिष्ट आदेश याचिका पर विचार करने का क्षेत्राधिकार प्रदान करने के लिए यह प्रकट होना चाहिए कि वाद-कारण के समर्थन में अभिवचित 'अभिन्न तथ्य' एक ऐसा आधार गठित करते हैं जिससे न्यायालय को विवाद का निर्णय करने की शक्ति प्राप्त हो और वह संपूर्ण रूप से या उसका एक अंश उसके क्षेत्राधिकार के भीतर उत्पन्न हुआ हो। उत्तरदाताओं द्वारा अपने आवेदन में अभिवचित प्रत्येक तथ्य *स्वतः* इस निष्कर्ष पर नहीं ले जाता है कि वे तथ्य न्यायालय के प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के भीतर वाद-कारण को जन्म देते हैं, जब तक कि वे तथ्य ऐसे न हों जिनका *वाद* अर्थात् मामले में शामिल विवाद के साथ कोई संबंध या प्रासंगिकता हो। इस न्यायालय ने अवलोकन किया:

> "**17**. उपरोक्त से यह देखा गया है कि किसी उच्च न्यायालय को विनिर्दिष्ट आदेश याचिका या इस मामले की तरह एक विशेष दीवानी आवेदन पर विचार करने का क्षेत्राधिकार प्रदान करने के लिए, उच्च न्यायालय को वाद-कारण के समर्थन में अभिवचित संपूर्ण तथ्यों से संतुष्ट होना चाहिए कि वे तथ्य एक ऐसा आधार गठित करते हैं जिससे न्यायालय को उस विवाद का निर्णय करने की शक्ति प्राप्त हो, जो कम से कम आंशिक रूप से उसके क्षेत्राधिकार के भीतर उत्पन्न हुआ है। उपरोक्त निर्णय से यह स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं द्वारा अपने आवेदन में अभिवचित प्रत्येक तथ्य स्वतः इस निष्कर्ष पर नहीं ले जाता है कि वे तथ्य न्यायालय के प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के भीतर वाद-कारण को जन्म देते हैं, जब तक कि अभिवचित तथ्य ऐसे न हों जिनका वाद अर्थात् मामले में शामिल विवाद के साथ कोई संबंध या प्रासंगिकता हो। वे तथ्य जिनका मामले में शामिल 'लिस' या विवाद से कोई सरोकार नहीं है, वे वाद-कारण को जन्म नहीं देते हैं जिससे संबंधित न्यायालय को प्रादेशिक क्षेत्राधिकार प्राप्त हो सके। यदि हम इस सिद्धांत को लागू करते हैं तो हम देखते हैं कि हमारी राय में

याचिका की कंडिका 16 में अभिवचित तथ्यों में से कोई भी तथ्यों के उस समूह की श्रेणी में नहीं आता है जो एक वाद-कारण गठित करे जिससे ऐसा विवाद उत्पन्न हो जो अहमदाबाद के न्यायालयों को प्रादेशिक क्षेत्राधिकार प्रदान कर सके।"

17. *ओम प्रकाश श्रीवास्तव बनाम भारत संघ एवं एक अन्य* (2006) 6 एससीसी 207 में, एक समान प्रश्न का उत्तर देते हुए इस न्यायालय ने यह अवलोकन किया कि अनुच्छेद 226 के खंड (2) के साधारण पाठ से यह स्पष्ट रूप से विदित है कि उच्च न्यायालय किसी भी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए या किसी अन्य प्रयोजन के लिए निर्देश, आदेश या विनिर्दिष्ट आदेश जारी करने की शक्ति का प्रयोग कर सकता है, यदि वह वाद-कारण जिसके संबंध में वह क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है (उत्पन्न होता है), इस बात के होते हुए भी कि उस सरकार या प्राधिकारी का स्थान या उस व्यक्ति का निवास, जिसके विरुद्ध निर्देश, आदेश या विनिर्दिष्ट आदेश जारी किया गया है, उक्त राज्यक्षेत्र के भीतर नहीं है। कंडिका 7 में इस न्यायालय ने अवलोकन किया:-

"**7.** यह प्रश्न कि विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर करने के लिए वाद-कारण पूर्णतः या अंशतः किसी उच्च न्यायालय की प्रादेशिक सीमाओं के भीतर उत्पन्न हुआ है या नहीं, इसका निर्णय भारत का संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाहियों की प्रकृति और चरित्र के आलोक में किया जाना चाहिए। एक विनिर्दिष्ट आदेश याचिका बनाए रखने के लिए, एक विनिर्दिष्ट आदेश याचिकाकर्ता को यह स्थापित करना होगा कि उसके द्वारा दावा किया गया कानूनी अधिकार प्रथम दृष्टया न्यायालय के क्षेत्राधिकार की प्रादेशिक सीमाओं के भीतर उत्तरदाता द्वारा या तो उल्लंघन किया गया है या उल्लंघन किए जाने की धमकी दी गई है और ऐसा उल्लंघन उसे वास्तविक क्षति पहुँचाकर या उसकी धमकी देकर हो सकता है।"

18. *राजेंद्रन चिंगारावेलु बनाम आर.के. मिश्रा, अतिरिक्त आयकर आयुक्त एवं अन्य*, (2010) 1 एससीसी 457 के मामले में, इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226(2) के

दायरे, विशेष रूप से विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को कायम रखने में वाद-कारण पर विचार करते हुए, निम्नलिखित निर्णय दिया:

"**9**. विचार के लिए उत्पन्न होने वाला पहला प्रश्न यह है कि क्या आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में उचित था कि चूंकि जब्ती चेन्नई (तमिलनाडु) में हुई थी, इसलिए अपीलकर्ता उसके समक्ष विनिर्दिष्ट आदेश याचिका बनाए नहीं रख सकता था। उच्च न्यायालय ने इस बात की जांच नहीं की कि क्या वाद-कारण का कोई हिस्सा आंध्र प्रदेश में उत्पन्न हुआ था। भारत का संविधान के अनुच्छेद 226 का खंड (2) यह स्पष्ट करता है कि वह उच्च न्यायालय, जो उन राज्यक्षेत्रों के संबंध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है जिसके भीतर वाद-कारण पूर्णतः या अंशतः उत्पन्न होता है, क्षेत्राधिकार रखेगा। इसका अर्थ यह होगा कि यदि वाद-कारण (तथ्यों का वह समूह जो याचिकाकर्ता को वाद करने का अधिकार देता है) का एक छोटा सा अंश भी आंध्र प्रदेश के राज्यक्षेत्रों के भीतर उत्पन्न हुआ है, तो उस राज्य के उच्च न्यायालय को क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा।

xxxxxx

11. सामान्यतः, हम आदेश को अपास्त कर देते और मामले को गुण-दोष के आधार पर निर्णय के लिए उच्च न्यायालय को प्रेषित कर देते। लेकिन अपीलकर्ता, जो सुनवाई की विभिन्न तिथियों पर स्वयं उपस्थित हुए थे, उनके प्रभावशाली दलीलों से दो बातें स्पष्ट हुईं। *प्रथम,* यह स्पष्ट था कि याचिका का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि कम से कम भविष्य में, उनके जैसे यात्रियों को हवाई अड्डों पर अनावश्यक उत्पीड़न या अत्यधिक कठिनाई का सामना न करना पड़े। वह निरीक्षण अधिकारियों को स्पष्ट दिशा-निर्देश और निर्देश जारी करने तथा निश्चित एवं कुशल सत्यापन/अन्वेषण प्रक्रियाओं को लागू करने के लिए निर्देश चाहते हैं। वह वर्तमान 'प्रोटोकॉल' (नियमों) में बदलाव चाहते हैं जहाँ अधिकारी अनिश्चित होते हैं कि क्या

करना है और प्रत्येक नियमित कदम के लिए उच्चाधिकारियों से निर्देश मांगते हैं और मंजूरी का अनिश्चित काल तक इंतजार करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप यात्रियों को घंटों-घंटों तक रोक कर रखा जाता है। संक्षेप में, वह चाहते हैं कि पूछताछ, सत्यापन और अन्वेषण कुशल, यात्री-अनुकूल और विनम्र हों। *द्वितीय,* वह चाहते हैं कि संबंधित विभाग/अधिकारी यह स्वीकार करें कि उन्हें अनावश्यक रूप से परेशान किया गया था।"

19. उपरोक्त की गई चर्चा को ध्यान में रखते हुए, इस बात में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर करने के लिए वाद-कारण पूर्णतः या अंशतः किसी उच्च न्यायालय की प्रादेशिक सीमा के भीतर उत्पन्न हुआ है या नहीं, इसका निर्णय भारत का संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाहियों की प्रकृति और चरित्र के आलोक में किया जाना चाहिए। एक विनिर्दिष्ट आदेश याचिका बनाए रखने के लिए, याचिकाकर्ता को यह स्थापित करना होगा कि उसके द्वारा दावा किया गया कानूनी अधिकार न्यायालय के क्षेत्राधिकार की प्रादेशिक सीमा के भीतर उत्तरदाताओं द्वारा उल्लंघन किया गया है।

20. हमने विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में अभिवचित तथ्यों और अपीलकर्ता द्वारा अवलम्बन लिए गए दस्तावेजों का परिशीलन किया है। निर्विवाद रूप से, अपीलकर्ता ने सांस लेने में कठिनाई सहित विभिन्न बीमारियों के कारण बीमार होने की सूचना दी थी। उसे अस्पताल भेज दिया गया था। फलस्वरूप, उसे आगे के चिकित्सा उपचार के लिए कार्यमुक्त कर दिया गया था। अंततः, उत्तरदाता ने 'डाइलेटेड कार्डियोमायोपैथी' (हृदय की मांसपेशियों की बीमारी) के कारण अपीलकर्ता को समुद्री सेवा के लिए स्थायी रूप से अनुपयुक्त घोषित कर दिया। परिणामस्वरूप, भारत सरकार के पोत परिवहन विभाग ने 12.4.2011 को अपीलकर्ता का नाविक के रूप में पंजीकरण रद्द करने का आदेश जारी किया। पत्र की एक प्रति अपीलकर्ता को बिहार में उसके पैतृक स्थान पर भेजी गई थी जहाँ वह चिकित्सकीय रूप से अनुपयुक्त पाए जाने के बाद रह रहा था। आगे यह प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता ने बिहार

राज्य में अपने घर से उत्तरदाता को विकलांगता मुआवजे का दावा करते हुए एक प्रतिवेदन भेजा था। उक्त प्रतिवेदन का उत्तर उत्तरदाता द्वारा दिया गया था, जो गया, बिहार में उसके घर के पते पर संबोधित था, जिसमें उसके विकलांगता मुआवजे के दावे को खारिज कर दिया गया था। यह और भी स्पष्ट है कि जब अपीलकर्ता को कार्यमुक्त किया गया और चिकित्सकीय रूप से अनुपयुक्त घोषित किया गया, तो वह बिहार के गया जिले में अपने घर वापस आ गया और उसके बाद, उसने अपने गया स्थित घर के पते से सभी दावे किए और प्रतिवेदन दायर किए तथा उन पत्रों और प्रतिवेदनों पर उत्तरदाताओं द्वारा विचार किया गया और उत्तर दिया गया तथा उन प्रतिवेदनों पर निर्णय की सूचना उसे बिहार में उसके घर के पते पर दी गई थी। स्वीकार्य रूप से, अपीलकर्ता हृदय की मांसपेशियों की गंभीर बीमारी (डाइलेटेड कार्डियोमायोपैथी) और सांस लेने की समस्या से पीड़ित था, जिसने उसे अपने पैतृक स्थान पर रहने के लिए मजबूर किया, जहाँ से वह अपने विकलांगता मुआवजे के संबंध में सभी पत्राचार कर रहा था। अतः, प्रथम दृष्टया सभी तथ्यों को एक साथ विचार करने पर, वाद-कारण का एक हिस्सा या अंश पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के भीतर उत्पन्न हुआ जहाँ उसे विकलांगता मुआवजे से वंचित करने वाला इनकार का पत्र प्राप्त हुआ था।

21. इसके अतिरिक्त, उत्तरदाताओं के प्रति-शपथपत्र और उसके साथ संलग्न दस्तावेजों से यह प्रकट होता है कि पटना उच्च न्यायालय में विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर होने के बाद, उस पर विचार किया गया और नोटिस जारी किए गए। उक्त नोटिस के अनुसरण में, उत्तरदाता उपस्थित हुए और उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में भाग लिया। इससे यह भी प्रकट होता है कि दोनों पक्षों के अधिवक्ता को सुनने के बाद, उच्च न्यायालय ने 18.9.2012 को एक अंतरिम आदेश पारित कर भारतीय नौवहन निगम के अधिकारियों को कम से कम 2.75 लाख रुपये की राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया, जो विनिर्दिष्ट आदेश याचिका के परिणाम के अधीन होगा। अंतरिम आदेश के अनुसरण में, उत्तरदाता भारतीय नौवहन

निगम ने (आयकर की कटौती के बाद) 2,67,270/- रुपये अपीलकर्ता के बैंक खाते में भेज दिए। हालांकि, जब विनिर्दिष्ट आदेश याचिका सुनवाई के लिए ली गई, तो उच्च न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया कि उसके प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के भीतर कोई वाद-कारण, यहाँ तक कि वाद-कारण का एक अंश भी, उत्पन्न नहीं हुआ है।

22. यहाँ पहले वर्णित मामले के संपूर्ण तथ्यों पर विचार करते हुए, जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश भी शामिल है, हमारी सुविचारित राय में, विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के अभाव में खारिज नहीं किया जाना चाहिए था। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जिस समय अंतरिम राहत प्रदान करने के प्रयोजन के लिए विनिर्दिष्ट आदेश याचिका पर सुनवाई की गई थी, उस समय उत्तरदाताओं ने प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के संबंध में कोई आपत्ति उठाने के बजाय इस आधार पर प्रार्थना का विरोध किया था कि विनिर्दिष्ट आदेश याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता को 2.75 लाख रुपये की राशि की पेशकश की गई थी, लेकिन उसने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया और विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर करके पृथक्करण मुआवजा प्रदान करने वाले आदेश को चुनौती दी। इसलिए, इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में विवादित आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है।

23. उपरोक्त के आलोक में, अपील स्वीकार की जाती है और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है और मामले को गुण-दोष के आधार पर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका का निर्णय करने के लिए उच्च न्यायालय को वापस भेज दिया जाता है।

राजेंद्र प्रसाद अपील स्वीकृत

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।